रजिस्ट्री सं. डी. एल.-33004/98 REGD. NO. D. L.-33004/98

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

असाधारण
EXTRAORDINARY
भाग III—खण्ड 4
PART III—Section 4
प्राधिकार से प्रकाशित
PUBLISHED BY AUTHORITY

Central Library
H08
23/10/98

सं॰ 36] नई दिल्ली, बुधवार, जुलाई 1, 1998/आषाढ़ 10, 1920
No. 36] NEW DELHI, WEDNESDAY, JULY 1, 1998/ASADHA 10, 1920

महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण

अधिसूचना

नई दिल्ली, 1 जुलाई, 1998

सं०टीएएमपी/2/97-जेएनपीटी.—महापत्तन न्यास अधिनियम, 1963 (1963 का 38) की धारा 48 और 50 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड के लौह अयस्क कार्गो की ढुलाई के लिए ट्रांशिपमेंट प्रचालनों के संबंध में शुल्क लगाने के बारे में उनके द्वारा जवाहरलाल नेहरू पत्तन न्यास तथा अन्य के विरुद्ध किए गए अभ्यावेदन से संबंधित मामले में जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास द्वारा उठाई गई प्रारम्भिक आपत्तियों के संबंध में एतद्द्वारा एक आदेश जारी करता है।

[एडीवीटी/III/IV/143/98 एक्सटी]

एस० सत्यम, अध्यक्ष

मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड ....**आवेदक**

बनाम

जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास ....**गैर-आवेदक**

आदेश

(18 जून, 1998 को पारित)

यह मामला मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड से प्राप्त एक अभ्यावेदन से संबंधित है जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि उनके लौह अयस्क कार्गो की ढुलाई के बारे में जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास ने अपने ट्रांशिपमेंट प्रचालनों में मनमाने ढंग से प्रशुल्क लगाया है।

2. इस मामले पर दिल्ली में 4 मई, 1998 को सुनवाई की गई।

3.1 सुनवाई के दौरान मामले के गुण दोषों की जाँच करने से पूर्व जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास ने इस मामले की जाँच करने की प्राधिकरण की अधिकारिता और मामले पर कार्यवाही करने के तरीके के बारे में कुछ प्रारंभिक आपत्तियां उठाई। सुनवाई के दौरान मौखिक प्रस्तुतीकरण में उठाई गई मुख्य प्रारंभिक आपत्तियां निम्न प्रकार थी :—

(i) महापत्तन पशुल्क प्राधिकरण अर्ध न्यायिक प्राधिकरण नहीं है।

(ii) इसलिए यह याचिकाओं के संबंध में निर्णय नहीं दे सकता।

(iii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण सुनवाई करने के लिए प्राधिकृत नहीं है।

यह साक्षियों को नहीं बुला सकता। यह साक्ष्य को रिकार्ड नहीं कर सकता।

3.2 जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास के लिए उपस्थित वरिष्ठ काउंसल श्री राजीव कुमार ने इस मामले में लिखित प्रस्तुतीकरण के लिए जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास को कुछ समय देने का अनुरोध किया। आवेदक (मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड) ऐसा समय दिए जाने के पक्ष में था ताकि यह जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास के लिखित प्रस्तुतीकरण का उचित रूप से उत्तर दे सके।

3.3 तदनुसार जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास को लिखित प्रस्तुतीकरण के लिए 15 मई 1998 तक का समय दिया गया और मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड को 25 मई 1998 को लिखित प्रस्तुतीकरण का उत्तर देने के लिए कहा गया ।

3.4 इस मामले में ज०ने०प०न्या० से लिखित प्रस्तुतीकरण प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने ऐसे मामलों में जाँच करने के बारे में प्राधिकरण की अधिकारिता से संबंधित अपनी प्रारंभिक आपत्तियाँ उठाई। प्रसंगवश ये आपत्तियाँ, इस मामले की अंतिम सुनवाई में मौखिक प्रस्तुतीकरण के दौरान उठाई गई तीन आपत्तियों में शामिल हैं। तथापि, मैसर्स इस्पात इंडस्ट्रीज लिमिटेड से लिखित प्रस्तुतीकरण का उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है।

4.1 ऐसे मामलों की जाँच करने के लिए प्राधिकरण की अधिकारिता के बारे में प्रारंभिक आपत्तियों जैसा कि ज०ने०प०न्या० द्वारा उठाई गई हैं, की सूची इस प्रकार दी जा सकती है :—

(i) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण कोई अर्ध न्यायिक प्राधिकरण नहीं है।

(ii) इसलिए यह याचिकाओं के बारे में निर्णय नहीं दे सकता।

(iii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण पत्तन न्यासों द्वारा उपलब्ध कराई गई सेवाओं के लिए केवल दरें नियत कर सकता है। यह किसी अन्य पक्षकार के साथ कोई सरोकार नहीं रख सकता।

(iv) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण सुनवाई करने के लिए प्राधिकृत नहीं है। यह साक्षियों को नहीं बुला सकता। यह साक्ष्य रिकार्ड नहीं कर सकता है।

(v) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण न्यासी बोर्ड का समस्तरीय है। यह बोर्ड से श्रेष्ठ नहीं है। बोर्ड माफी और छूट के लिए आदेश दे सकता है जिसे महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण नहीं दे सकता।

(vi) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण दरों के बारे में अपने आदेशों का प्रवर्तन भी नहीं करा सकता।

(vii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण केवल नई दरों के संबंध में निर्णय कर सकता है इसके गठन से पूर्व लागू दरें वैध रहेंगी। महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण उनकी वैधता पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकता।

(viii) महापत्तन न्यास अधिनियम के अधीन बोर्ड, पट्टों के सभी मामलों के बारे में निर्णय लेने के लिए सक्षम है। महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण इस संबंध में बोर्ड के विवेकाधिकार पर निर्णय नहीं ले सकता। यह विवेकाधिकार, पत्तन न्यास के सभी प्रबंधकीय कार्यों पर नियंत्रण रखने के बोर्ड के परमाधिकार का अभिन्न अंग है। यह बात महत्वपूर्ण है कि महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण और बोर्ड दोनों के लिए सरकार 'श्रेष्ठ निकाय' है जो दोनों का ही अधिक्रमण कर सकती है।

(ix) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण ने अपने कार्यों के बारे में कोई नियमावली अथवा विनियमावली अधिसूचित नहीं की है। इसलिए इस समय उसके द्वारा अपनाई जा रही प्रक्रिया किन्हीं आदेशों के अनुरूप नहीं कही जा सकती।

4.2 इन सब बातों पर विचार करते हुए हम इन आपत्तियों पर क्रमानुसार इस प्रकार चर्चा करते हैं :—

(i) **महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण, अर्ध न्यायिक प्राधिकरण नहीं है।**

यह कानून की सही स्थिति नहीं है।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्राधिकरण का गठन संविधि के अंतर्गत किया गया है, अत: यह एक सांविधिक प्राधिकरण है। इसके मुख्य कार्य दर, शुल्क, पत्तन देयताओं के मान और पत्तन न्यास की संपत्तियों की दरें भी नियत करना है। प्रशुल्क प्रस्तावों से संबंधित मामलों में निरपवाद रूप से दो पक्षकार हैं, एक न्यासी बोर्ड और दूसरा प्रयोक्ता या प्रयोक्ता निकाय।

पहले न्यासी बोर्ड को उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए दर, शुल्क और पत्तन देयतामान नियत करने की शक्ति प्राप्त थी। दूसरे शब्दों में वे सेवा प्रदान किया करते थे और स्वयं शुल्क, दरें और देयताएं निर्धारित करते थे। महापत्तन न्यास अधिनियम का संशोधन होने के पश्चात् सेवाएं न्यासी बोर्ड द्वारा प्रदान की जानी हैं परन्तु दर, शुल्क, पत्तन देयता आदि के मान संविधि के तहत गठित एक स्वतंत्र निकाय द्वारा निर्धारित किए जाने हैं।

कानून की तयशुदा स्थिति यह है कि यदि किसी संविधि द्वारा किसी प्राधिकरण को जो सामान्य अर्थ में कोई न्यायालय नहीं है, संविधि के अधीन किसी एक पक्षकार द्वारा किए गए दावे से उत्पन्न विवाद जिनका किसी दूसरे पक्षकार द्वारा विरोध किया जाता है, का निर्णय करने और परस्पर विरोधी वादकारी पक्षकारों के संबंधित अधिकारों का निर्णय करने की शक्ति प्राप्त होती है, प्रथम दृष्टया वाद है और संविधि में किसी प्रतिकूल बात के होने पर प्राधिकरण का न्यायिक कार्यवाही करने का कर्त्तव्य है और प्राधिकरण का निर्णय अर्ध न्यायिक कार्य है।

इसी प्रकार यदि किसी सांविधिक प्राधिकरण को कोई ऐसा कार्य करने की शक्ति प्राप्त है जिससे विषय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े तब यद्यपि प्राधिकरण के अतिरिक्त दो पक्षकार नहीं हैं और विवाद, कार्यवाही करने का प्रस्ताव करने वाले प्राधिकरण और उसका विरोध करने वाले विषय के बीच है तो प्राधिकरण द्वारा किया गया अंतिम निर्धारण तब भी एक न्यायिक कार्य होगा बशर्ते प्राधिकरण के लिए संविधि द्वारा न्यायिक कार्य किया जाना अपेक्षित हो।

संक्षेप में निर्णायक प्राधिकरण के अतिरिक्त दो पक्षकारों के मौजूद होने और किसी अन्य घटक के मौजूद न होने पर प्रथम दृष्टया प्राधिकरण को न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्त्तव्य प्राप्त होता है, किन्हीं कार्यवाहियों में ऐसे दो पक्षकारों के न होने से प्राधिकरण का कार्य अर्ध न्यायिक श्रेणी से बाहर नहीं जाता, यदि फिर भी प्राधिकरण के लिए न्यायिक कार्यवाही करना अपेक्षित हो।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, न्यासी बोर्ड सेवाएं प्रदान कर रहा है और प्रयोक्ता स्वयं सेवाओं का लाभ ले रहे हैं। पहले दरों, शुल्कों, देयताओं को निर्धारित करने के कार्य बोर्ड के पास थे, भले ही सेवाएं उन्हीं के द्वारा प्रदान की जाती थीं। अब दरों आदि को निर्धारित करने के कार्य बोर्ड के पास थे, एक सांविधिक निकाय को प्रदान कर दिए गए हैं।

इस प्रकार दो पक्षकार हैं—एक न्यासी बोर्ड जिन्हें सेवाएं प्रदान करना अपेक्षित होता है और दूसरे 'प्रयोक्ता' जो प्रदान की गई सेवाओं का स्वयं उपयोग करते हैं। प्राधिकरण को दरों, शुल्कों, देयताओं आदि के मान निर्धारित करने होते हैं जिन्हें बोर्ड प्रयोक्ताओं को प्रदान की गई सेवाओं के लिए वसूल कर सकता है।

इस तरह निर्णायक प्राधिकरण के अतिरिक्त दो पक्षकार हैं और इसलिए प्राधिकरण को न्यायिक कार्य करना होता है और यह एक अर्ध न्यायिक प्राधिकरण है।

इस मुद्दे पर पूर्वोक्त सामान्य विश्लेषण के अतिरिक्त हमें ज०ने०प०न्या० के कुछ विशिष्ट प्रतिविरोधों को भी ध्यान में रखना होगा।

ज०ने०प०न्या० ने तर्क दिया है कि यह प्राधिकरण दरमानों और शर्तों को नियत करने के लिए गठित केवल एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में है। यदि विधायिका का अभिप्राय इस प्राधिकरण को केवल एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में गठित करने का रहा होता तो संविधि में किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं रही होती क्योंकि 'विशेषज्ञ निकाय' का गठन किसी कार्यपालिक आदेश अर्थात् सरकार के संकल्प के जरिए किया जा सकता था। आमतौर पर उल्लिखित मुद्दों की जाँच करने और सिफारिशें करने के लिए विशेषज्ञ निकाय का गठन 'एक बार' का कार्य है; इसके बाद यह पदकार्य निवृत्त हो जाता है। वर्तमान मामले में इस प्राधिकरण का गठन पूर्वोक्त नाम से निगमित निकाय के रूप में किया गया है जिसके पास शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर है तथा उक्त नाम से यह मुकदमा कर सकता है या इस पर मुकदमा किया जा सकता है। अतः यदि ज०ने०प०न्या० का प्रतिविरोध स्वीकार कर लिया जाए तो संविधि में संशोधन करके एक स्थायी निकाय गठित करने की कोई आवश्यकता नहीं रही होती।

प्रयोजन विशेष के लिए गठित कोई विशेषज्ञ निकाय जो सिफारिशें करता है, वह किसी के लिए बाध्यकारी नहीं होती हैं। किन्तु इस प्राधिकरण का निर्णय न्यासी बोर्ड और प्रयोक्ताओं दोनों के लिए बाध्यकारी होगा। अतः यह तर्क देना भ्रामक है कि यह प्राधिकरण केवल एक 'विशेषज्ञ निकाय' है।

ज०ने०प०न्या० ने इस बात पर भी बल दिया है कि इस प्राधिकरण को शुल्क लगाने के सिवाय और कोई शक्ति प्रदत्त नहीं है। शुल्क लगाने की शक्ति एक प्रभुत्वसंपन्न कार्य है और जब तक विधान मंडल के अधिनियम द्वारा प्राधिकृत न हो, कोई शुल्क नहीं लगाया जा सकता। अब तक किसी भी 'विशेषज्ञ निकाय' को राज्य के प्रभुता संपन्न कार्यों को करने के लिए नहीं कहा गया है। ज०ने०प०न्या० ने 'विशेषज्ञ निकाय' की धारणा को स्पष्टतः गलत समझा है जो कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरण से बिल्कुल अलग है। आगे यह भी प्रतिविरोध किया गया है कि यह प्राधिकरण एक तकनीकी निकाय है। प्राधिकरण के सदस्यों के लिए कुछ तकनीकी अर्हता या ज्ञान निर्धारित कर दिए जाने के सामान्य कारण से यह अभिप्राय नहीं है कि यह प्राधिकरण केवल एक 'तकनीकी' निकाय होगा। इसके कार्यों, शक्तियों और कर्त्तव्यों की यह निश्चय करने के लिए जाँच करनी होगी कि क्या यह केवल तकनीकी निकाय है। इस मामले में इस प्राधिकरण को कुछ तकनीकी कार्यों के निर्वहण के लिए नहीं कहा गया है; इसे दो या दो से अधिक प्रतिवादी पक्षकारों के अधिकारों और शर्तों के बारे में निश्चय करने, निर्धारण करने और अधिनिर्णय करने के लिए कहा गया है। दूसरे शब्दों में यह एक ऐसा निकाय नहीं है जो तकनीकी ज्ञान के आधार पर महज प्रस्ताव तैयार करने के लिए अपेक्षित है बल्कि यह प्रतिवादी पक्षकारों के बीच विवादों को तय करने के लिए है। इन तथ्यों के आलोक में ज०ने०प०न्या० का प्रतिविरोध स्पष्ट रूप से किसी गुणागुण (मेरिट) से रहित है।

(ii) इसलिए महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण याचिकाओं पर निर्णय नहीं दे सकता।

यह आपत्ति, इस प्राधिकरण के अर्ध न्यायिक स्वरूप से संबंधित आपत्ति की भांति भ्रामक है।

कानून का यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरणों को पक्षकारों के किसी विवाद को निर्धारित करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए। प्राकृतिक न्याय का एक सिद्धांत यह है कि पक्षकारों को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा जिनमें वे अपने दृष्टिकोण अभिव्यक्त कर सकते हैं ताकि प्राधिकरण मुद्दे का वाद-विषय निर्धारित कर सके। न्यायिक निर्धारण का आवश्यक तत्व किसी आदेश से प्रभावित पक्षकार

को अभ्यावेदन देने का अवसर देना है। ऐसा होने से इस प्राधिकरण के लिए यह पूरी तरह आवश्यक है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करने के लिए पक्षकारों को अभ्यावेदन का अधिकार प्रदान करें।

व्यक्तियों के अधिकारों को निर्धारित करने वाले किसी न्यायिक अथवा अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण/प्राधिकरण को विधि सम्मत शासन बनाए रखने के लिए अवश्य ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए। कारण यह है कि यह सिद्धांत न्याय का सार सत्व है और इसलिए इसका पालन किसी ऐसे व्यक्ति अथवा निकाय द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए जिसे पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण करने का कर्त्तव्य सौंपा गया हो और प्रसंगवश जिसे न्यायिक रूप से कार्य करने के कर्त्तव्य में शामिल कहा जा सकता हो।

प्राकृतिक न्याय का पहला सिद्धांत यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता। मालूम होता है कि विधायिका के मस्तिष्क में प्राकृतिक न्याय का यही सिद्धांत था जब उसने न्यासी बोर्ड से प्रशुल्क लगाने आदि की शक्तियां वापस लीं और उन्हें अन्य निकाय अर्थात् इस प्राधिकरण को प्रदान किया।

प्राकृतिक न्याय का दूसरा सिद्धांत यह है कि "दूसरे पक्ष को भी सुनो"। वास्तव में इस सिद्धांत का प्रयोग केवल विधिक न्यायाधिकरणों/प्राधिकरणों के कार्यक्षेत्र तक ही समिति नहीं है। यह सिद्धांत ऐसे प्रत्येक न्यायाधिकरण या व्यक्तियों के निकाय पर स्पष्टत: लागू होता है जिनमें अलग-अलग व्यक्तियों पर सिविल परिणामों वाले मामले में निर्णय देने का प्राधिकार निहित होता है। किसी नागरिक पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की शक्ति से संपन्न कोई न्यायाधिकरण/प्राधिकरण, चाहे वह न्यायिक हो या प्रशासनिक, कार्रवाई शुरू करने से पहले उस नागरिक को सुने जाने का अवसर देने के लिए बाध्य होता है। इस कथन का परिणाम यह है कि किसी भी व्यक्ति को उसे सुने जाने का अवसर दिए बगैर उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में इस प्राधिकरण के कार्यों, शक्तियों और कर्त्तव्यों के विशिष्ट स्वरूप के कारण पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने वाला कोई निर्णय लेने से पूर्व उन्हें सुना जाना अनिवार्य है।

यह तर्क दिया गया है कि सुनवाई का अधिकार द्वारा प्रदान नहीं किया गया है। कानून की तयशुदा स्थिति यह है कि उन सभी पक्षकारों को सुनवाई के लिए बुलाना होता है जिन्हें सिविल परिणामों को भुगतने की संभावना होती है, जब तक कि विधान मंडल द्वारा स्पष्ट रूप से या विवक्षित रूप से ऐसी सुनवाई किए बिना कार्यवाही करने का प्राधिकार न दिया गया हो। इस मामले में ऐसा कोई विशिष्ट प्राधिकार नहीं दिया गया है। इस कारण से इस प्राधिकरण के लिए दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के सिवाय अथवा अन्य पक्षकार द्वारा उठाए गए विवाद के विरुद्ध उन्हें अभ्यावेदन करने के लिए अवसर देने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। यदि इन बुनियादी अपेक्षाओं का विरोध होता है तो प्राधिकरण का कोई भी निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन न होने के कारण आरंभ से ही व्यर्थ हो सकता है।

जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्याय ने यह तर्क दिया है कि निर्णय देने की शक्ति या तो विनिर्दिष्ट रूप से सन्निहित होगी या फिर चीजों की बुनयादी स्कीम से असंगत नहीं होगी। वर्तमान रूप में उनका तर्क है कि महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण से संबंधित उपबंधों में निर्णय देने की व्यवस्था नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में उन परिस्थितियों को स्मरण करना संगत होगा जिनके कारण इस तटस्थ, सांविधिक स्वायत्त प्राधिकरण का गठन हुआ।

ग्यारह महापत्तन देश के 80% आयात/निर्यात यातायात हैंडल करते हैं। विकास के हमारे वर्तमान चरण में यह महसूस किया गया कि अर्थव्यवस्था से महापत्तनों में यातायात में किसी प्रकार की अस्थिरता न होने पाए। चूँकि पत्तनों का निजीकरण किए जाने के अभियान की प्रत्येक घटनाओं का अनुमान लगाना संभव नहीं था, इसलिए यह सतर्क दृष्टिकोण अपनाया गया। अत: जब तक निजीकरण की गति में तेजी नहीं आती खुली बाजार स्थितियाँ स्थिर नहीं हो जातीं, खुले बाजार की शक्तियों के मुक्त प्रचालन की सिफारिश नहीं की गई। तदनुसार प्रशुल्कों के विनियमन के लिए एक तटस्थ नियामक निकाय गठित करने का प्रस्ताव किया गया। संभवत: इस व्यवस्था में पत्तनों में निजी एकाधिकार से रक्षा करने की चिंता की एक अंतर्धारा भी निहित थी। स्वयं निजी प्रचालकों (भावी) ने भी पत्तन न्यासों अथवा सरकार के बजाय सांविधिक स्वायत्त निकाए द्वारा लगाए जाने वाले प्रशुल्कों के विनियमन को तरजीह दी।

इस पृष्ठभूमि में प्राधिकरण का मुख्य प्रयोजन स्पष्ट रूप से पत्तन न्यासों निजी प्रचालकों और (उनके) प्रयोक्ताओं के बीच माध्यस्थम का कार्य करना है। मूल प्रयोजन यह है कि सार्वजनिक अथवा निजी एकाधिकार की बुराइयों से रक्षा हो और प्रशुल्क ढाँचा युक्तिसंगत हो तथा प्रशुल्क नियतन प्रणाली सुचारु हो। यदि ऐसा होता है तो उपयुक्त रूप से बनाई गई परामर्शी प्रणाली कैसे चीजों की बुनियादी स्कीम से प्रतिकूल हो सकती है।

(iii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण पत्तन न्यासों द्वारा उपलब्ध कराई गई सेवाओं के लिए केवल दरें नियत कर सकता है। यह किसी अन्य पक्षकार के साथ कोई सरोकार नहीं रख सकता।

प्राधिकरण से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने कार्य में वस्तुनिष्ठता और पारदर्शिता का परिचय दे और प्रशुल्क नियमन को सुचारू एवं व्यवस्थित करे। ऐसी उम्मीद है कि यह शुल्क लाभ का इस्तेमाल पत्तनों पर प्रचालन क्षमता में सुधार करने के लिए करेगा। तथापि, संयोगवश ये बातें प्राधिकरण की भूमिका के निर्वाह में पूरी तरह नहीं आ पातीं। क्या इसकी भूमिका प्रशुल्क निर्धारण तक ही बिल्कुल सीमित कर दी जाए या प्राधिकरण, पत्तनों पर प्रचालन क्षमता में सुधार करने के लिए 'प्रशुल्क लाभ' का इस्तेमाल करना शुरू कर सकता है ? पत्तन न्यास प्राधिकारी, इसकी भूमिका को प्रशुल्क निर्धारण तक ही सीमित रखना चाहेंगे, कम से कम उनमें से कुछ तो ऐसा चाहेंगे ही। किन्तु प्रयोक्ता, प्राधिकरण के लिए बड़ी भूमिका को तरजीह देते हैं। इन बातों के चलते विधानमंडल के इरादे से भी यही प्रकट होगा कि यदि प्रशुल्कों के विनियमन से बेहतर गुणता वाली सेवा नहीं मिल पाती है तो ऐसा विनियमन कोई बहुत सार्थक नहीं होगा। इस पृष्ठभूमि को देखते हुए हमने यह निर्णय लिया कि प्रयोक्ता परक कार्य को बढ़ावा दिया जाए और इसके कार्य में भागीदारी प्रकिया को प्रबल किया जाए।

कानून का यह तयशुदा सिद्धांत है कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरण को पक्षकारों के बीच किसी विवाद का निपटारा करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण अवश्य करना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों में से एक सिद्धांत यह है कि पक्षकारों की सुनवाई की जाएगी और उस समय वे अपने दृष्टिकोण व्यक्त कर सकते हैं ताकि प्राधिकरण वाद-विषयों का निपटारा कर सके। न्यायिक निर्धारण का साइ सत्य किसी आदेश से प्रभावित पक्षकार को अभ्यावेदन करने का अवसर प्रदान करना है जिसमें कोई निर्णय दिए जाने से पूर्व वह कुछ प्रकार की जाँच, सुनवाई और साक्ष्य यदि कोई हो, और विवाद के गुणागुण पर महत्व रखने वाले सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के लिए कह सकता है। तदनुसार यह अनुवार्य है कि प्राधिकरण द्वारा विवादास्पद मुद्दे का निपटारा किए जाने से पूर्व संबंधित पक्षकारों की सुनवाई की जाती है।

हालाँकि यह मानकर कि प्राधिकरण कोई अर्थ न्यायिक निकाय नहीं है, यद्यिप ऐसा है नहीं, बल्कि एक प्रशासनिक प्राधिकरण है, फिर भी प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत तो यहाँ भी लागू होगा और उसे (प्राधिकरण) पक्षकारों की सुनवाई करनी ही होगी। एक से अधिक मामलों में ऐसा निर्दिष्ट किया गया है कि यदि किसी प्रशासनिक आदेश में सिविल परिणामों की बात हो अथवा उससे किसी नागरिक का कोई अधिकार प्रभावित होता है जिसे किसी कानूनी कार्रवाई द्वारा लागू किया जा सकता हो जिसमें प्रक्रियात्मक अधिकार भी शामिल हो तो ऐसा प्रशासनिक आदेश भी प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरुप ही होना चाहिए।

अत: प्राधिकरण, पत्तन न्यासों और प्रयोक्ताओं के बीच चल रहे किसी विवाद पर निर्णय लेने के पहले सुनवाई अवश्य करें।

कोई पत्तन न्यास एक सार्वजनिक न्यास होता है जिसका सृजन (और जिसे मुसज्जित), समुद्री मार्ग निर्यातकों की मदद करने के सार्वजनिक प्रयोजन को पूरा करने के लिए किया गया है। यह वास्तव में आश्चर्यजनक है कि यही सार्वजनिक न्यास, अपने 'प्रयोक्ताओं' को अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त अवसर न देने के बारे में इतने जोरदार ढंग से बहस करे।

(iv) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण सुनवाई करने के लिए प्राधिकृत नहीं है। यह साक्षियों को नहीं बुला सकता। यह साक्ष्य को रिकार्ड नहीं कर सकता।

ऊपर दिए गए विश्लेषण के आलोक में यह बात भरपूर स्पष्ट है कि यह प्राधिकरण अपने स्वरुप में अर्ध न्यायिक होने के कारण सुनवाई कर सकता है (और अवश्य करनी चाहिए) तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण कर सकता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्थापित निर्णय जन्य विधि के अनुसार कोई प्रशासनिक आदेश ही प्राकृतिक न्याय के नियमों के स्वरुप ही होना चाहिए, यदि ऐसे आदेश से सिविल परिणामों की बात हो अथवा ऐसे आदेश से किसी नागरिक का कोई अधिकार प्रभावित होता हो जिसे कानूनी कार्रवाई द्वारा लागू किया जा सकता हो जिसमें कि प्रक्रियात्मक अधिकार भी शामिल हो। अत: इस आपित्त में कोई दम नहीं है।

जहाँ तक व्यक्तियों आदि को बुलाने के लिए शक्ति प्रदायक निर्दिष्ट उपबंधों के प्रभाव से संबंधित टिप्पणी का संबंध है, यह स्वीकार करना होगा कि स्थिति वास्तव में सही तथ्यपरक है। ये ही सांविधिक उपबंधों में अंतर है। इन्हीं से प्राधिकरण के काम में बाधा उत्पन्न होती है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि ये प्राधिकरण की भूमिका और कार्यों को रोक देते हैं। आज स्थिति यह है कि प्राधिकरण व्यक्तियों को उपस्थित होने और अभिसाक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है; किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्राधिकरण कार्रवाई नहीं कर सकता है। यह व्यक्तियों को लिखित में अथवा व्यक्तिगत रूप से साक्ष्य देने के लिए आमंत्रित कर सकता है और उनका साक्ष्य भी रिकार्ड कर सकता है जिनसे प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। यहां इस बात पर ध्यान देना संगत है कि हमेशा मौखिक साक्ष्य ही आवश्यक नहीं होता बल्कि पक्षकार दस्तावेजी साक्ष्य अथवा साक्ष्य का शपथ पत्र प्रस्तुत कर सकते हैं ताकि प्राधिकरण के समक्ष सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त सामग्री हो।

वस्तुत: इस आपत्ति में कोई दम नहीं है और इसे रद्द किया जा सकता है।

(v) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण न्यासी बोर्ड का समस्तरीय है। यह बोर्ड से श्रेष्ठ नहीं है। बोर्ड माफी और छूट के लिए आदेश दे सकता है जिसे महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण नहीं दे सकता।

(vi) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण दरों के बारे में अपने आदेशों का प्रवर्तन भी नहीं कर सकता।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्राधिकरण और बोर्ड दोनों सांविधिक निकाय हैं। इन दोनों निकायों के संबंध में सरकार की प्रत्यादेशक शक्तियों के बारे में भी कोई विवाद नहीं है। परन्तु जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास ने इस बात की अनदेखी की हुई मालूम होती है कि प्रणाली में अन्तर्निष्ठ "कार्यात्मक परम्परागत व्यवस्था" प्रशुल्क विनियमन के लिए संविधि द्वारा निर्धारित की गई हैं। जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास ने यह मानकर गलती की है कि प्राधिकरण को केवल प्रशुल्क नियत करने के प्रयोजनार्थ बोर्ड की (तत्कालीन) शक्तियाँ दी गई हैं। सही स्थिति यह है कि सरकार द्वारा पहले प्रयोग की जाने वाली 'स्वीकृति प्रदायक शक्तियाँ' (अब) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण में निहित कर दी गई हैं। यदि यही बात है तो फिर प्राधिकरण, प्रशुल्कों से संबंधित मामलों में बोर्ड की शिफारिशों पर निर्णय देने के सिवाय कुछ नहीं कर सकता है।

जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास द्वारा प्रशुल्क विनियमन को पुन: बहुत तंगदिली से समझा गया है। जैसी पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है, प्राधिकरण से अपने कार्य में वास्तविकता और पारदर्शिता शुरु करने और प्रशुल्कों को सुचारु और सुव्यवस्थित रूप से नियत करने की आशा की जाती है। यह भी आशा है (और विधायिका का आशय भी ऐसा मालूम होता है) कि यह पत्तनों में प्रचालनात्मक कुशलता में सुधार करने के लिए प्रशुल्क लाभ का उपयोग करेगा। इसका कारण यह है कि प्राधिकरण के लिए केवल दर ही नहीं बल्कि उन्हें लागू करने वाली नियामक शर्तों को भी निर्धारित करना अपेक्षित है।

प्राधिकरण के 'श्रेष्ठ' न होने के मुद्दे पर आगे तर्क करते हुए वस्तुत: यह तर्क देने का प्रयास किया गया है कि वास्तव में बोर्ड 'श्रेष्ठ' है। तर्क यह है कि 'दरें' बोर्ड द्वारा लागू की जाती हैं न कि प्राधिकरण द्वारा, प्राधिकरण के अपने आदेश लागू करने की शक्ति देने का वास्तव में कोई प्रावधान नहीं है। इस तर्क से मालूम होता है कि 'प्रवर्तन' और 'बाध्यता' के बीच भ्रांति है। संविधि में बाध्यकारी शक्तियों का प्रावधान नहीं किया गया। उपलब्ध प्रावधानों के अनुसार भारत के राजपत्र में 'अधिसूचनाओं' की कार्यवाही इसके आदेशों के प्रवर्तन के समान है। अधिसूचित आदेशों का पालन न किया जाना स्वत: एक गैर कानूनी कार्य होगा। निसंदेह यह संविधि में कमी को पूरा करने और 'बाध्यकारी शक्तियों' में वृद्धि करने में अधिक सार्थक होगा। परन्तु यह समझा जाना ही चाहिए कि इस कमी से प्राधिकरण के आदेशों की 'शक्ति' में किसी प्रकार की कमजोरी नहीं आती।

यह भी तर्क दिया गया है कि मूलत: माफी और छूट का आदेश देने की शक्ति बोर्ड के पास ही है और इस प्राधिकरण को नहीं दी गई है जिससे इस प्राधिकरण की प्रतिबंधित भूमिका का संकेत मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि माफी और छूट प्रदान करने की शक्ति कभी भी किसी ऐसे अर्ध न्यायिक प्राधिकरण द्वारा प्रयोग नहीं की जा सकती जिसका मुख्य कार्य दो पक्षकारों के अधिकारों और तर्कों के संबंध में निर्णय करना हो। माफी और छूट प्रदान करने की शक्ति किसी ऐसे प्रशासनिक प्राधिकरण के पास होती है कि अलग-अलग मामलों अथवा मामलों की श्रेणियों के आधार पर विवेकाधिकार का उपयोग करना होता है। संयोगवश इस तथ्य से इस मत का समर्थन होता है कि यह प्राधिकरण प्रशासनिक निकाय नहीं अपितु एक अर्ध न्यायिक निकाय है।

जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास ने न्यासी बोर्ड की शक्तियों और कार्यों की सीमा बताने के लिए विभिन्न सांविधिक उपबंधों का उल्लेख किया है॥ कानून में इन उपबंधों के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता। न्यासी बोर्ड की शक्तियां और कार्य प्रशासनिक स्वरूप के हैं और इस प्राधिकरण का ऐसे प्रशासनिक कार्यों से कोई संबंध नहीं है। प्राधिकरण का संबंध उन अर्ध न्यायिक कार्यों से होगा जिन्हें संशोधित संविधि द्वारा न्यासी बोर्ड से ले लिया गया है और प्राधिकरण को दे दिया गया है। हमारे विचार से विधायिका का यह सोचा समझा कार्य था कि प्रशासनिक और अर्ध न्यायिक शक्तियों/कार्यों को अलग-अलग किया जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन न हो।

(vii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण केवल नई दरों के संबंध में निर्णय कर सकता है। इसके गठन से पूर्व लागू दरें वैध रहेंगी। महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण उनकी वैधता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगा सकता।

इस मुद्दे के संबंध में किसी संदिग्धता अथवा भ्रामकता को दूर करने के लिए हम स्पष्ट रूप से यह बताना चाहते हैं कि इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पहले से स्वीकृत दर तब तक वैध रहेंगी जब तक संविधि के अनुसार इस प्राधिकरण द्वारा अपने सांविधिक कार्यों के निष्पादन में उन्हें परिवर्तित न कर दिया जाए। जैसे ही नई दरें निर्धारित और अधिसूचित की जाएंगी, पुरानी दरों के स्थान पर नई दरें लागू हो जाएंगी।

नई दरों को निधारित करने के लिए प्राधिकरण की शक्तियों के बारे में कोई विवाद नहीं है। आपत्ति यह है कि यह मौजूदा दरों की वैधता पर प्रश्न नहीं का सकता। कहना न होगा कि यह आपत्ति भ्रामक है और सर्वथा तथ्यहीन है। अन्तत: नई दरों का निर्धारित पुरानी दरों को बदलने के समान नहीं है (और प्रक्रियागत इस पर प्रश्न करने के लिए।)

जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास ने स्पष्टत: ऐसे सभी अधिनियमों के बारे में सामान्य निर्धारण को भ्रमित किया है, जहाँ नए नियामक तंत्र लागू किए जाते हैं; कि पहले से मौजूद दरें नए नियामक तंत्र के गठन से ही निष्प्रभावी नहीं हो जाएगी; उन्हें विशेष रूप से निष्प्रभावी करना होगा और नियामक तंत्र द्वारा नई दरों द्वारा प्रतिस्थापित करना होगा।

इस संदर्भ में यह मानना होगा कि प्रशुल्क प्रस्ताव तैयार करने के लिए प्राधिकरण की स्वत: प्रेरित अधिकारिता इसके पास सदैव उपलब्ध रहती है। दूसरे शब्दों में इसे पत्तन न्यास अथवा किसी अन्य स्थान से प्रस्ताव भेजे जाने की आवश्यकता नहीं है। अर्थात् महापत्तन न्यास अधिनियम में भी यह विनिर्दिष्ट नहीं है कि प्रस्तावों की शुरुआत कोई भी कर सकेगा। प्राधिकरण को दर निर्धारित करने और अधिसूचित करने का पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है। ऐसा कानूनी प्रावधान होते हुए भी जानबूझकर यह तर्क कैसे दिया जा सकता है कि प्राधिकरण किसी दर के बारे में प्रश्न नहीं उठा सकता। संभवत: जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास मार्च, 1997 में अधिसूचित दरों के संदर्भ में अपनी कार्रवाई को उचित ठहराने की आधारशिला रख रहा है। उनका विश्वास इस स्थिति से बढ़ा हुआ मालूम होता है कि अधिसूचित दरें सरकार द्वारा स्वीकृत की गई थी। प्रथम दृष्टि में इन दरों का कोई संदर्भ, असंगत मालूम होता है। इसे जैसा है वैसा मान लेने पर भी यदि इन दरों को ध्यान में रखा भी जाए तो यह मानना होगा कि इन्हें फरवरी, 1997 में महापत्तन न्यास अधिनियम में संशोधन पारित करने के पश्चात् मार्च, 1997 में अधिसूचित किया गया था। उसके पिश्चात् केवल इस प्राधिकरण द्वारा ही दरें अनुमोदित की जा सकती हैं। इस स्थिति में जवाहर लाल नेहरु पत्तन न्यास द्वारा अधिसूचित संदर्भाधीन दरों की वैधता को चुनौती दी जा सकती है।

(viii) महापत्तन न्यास अधिनियम के अधीन बोर्ड, पट्टों के सभी मामलों के बारे में निर्णय लेने के लिए सक्षम है। महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण इस संबंध में बोर्ड के विवेकाधिकार पर निर्णय नहीं ले सकता। यह विवेकाधिकार पत्तन न्यास के सभी प्रबंधकीय कार्यों पर नियंत्रण रखने के लिए बोर्ड के परमाधिकार का अभिन्न अंग है।

इस आपत्ति के संबंध में हम यह स्थिति पुन: दोहराने के लिए बाध्य हैं कि दो सांविधिक निकायों के बीच हितों के टकराव के लिए कोई गुंजाइस नहीं है। दोनों के स्वतंत्र कार्यक्षेत्र हैं——एक प्रशासनिक और दूसरा अर्ध न्यायिक। बोर्ड को इसके कार्यक्षेत्र में दी गई शक्तियों के बारे में कोई विवाद नहीं है। बोर्ड के प्रबंधकीय कार्यों का अतिक्रमण करने का भी प्राधिकरण का कोई आशय नहीं है। वे पत्तन स्तर पर हर प्रकार से कोई कार्यकलाप

शुरु कर सकते हैं। जब तक ऐसे कार्यकलापों से प्रशुल्कों की स्कीम से किसी प्रकार टकराव नहीं होता तब तक इस प्राधिकरण द्वारा ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं है। परन्तु प्रशुल्कों की गणना के प्रयोजन के लिए किसी विशेष कार्यकलाप की संगतता अथवा आवश्यकता की जांच करने के बारे में प्राधिकरण की कानूनी भूमिका को न्यायपूर्ण रूप में चुनौती नहीं दी जा सकती । वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से जवाहरलाल नेहरू पत्तन न्यास द्वारा इसी पहलू की अनदेखी की जा रही है (अथवा अनदेखी करने का विचार है)।

फलत: यह आपत्ति विचार करने के योग्य नहीं है।

(ix) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण ने अपने कार्यों के बारे में कोई नियमावली विनियमावली अधिसूचित नहीं की है। इसलिए इस समय उसके द्वारा अपनाई जा रही प्रक्रिया किन्हीं आदेशों के अनुरूप नहीं कही जा सकती।

कानून का स्थापित सिद्धांत यह है कि जहां कोई सांविधिक नियमावली अथवा विनियमावली नहीं होती है तो कोई निर्णायक प्राधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अपनी प्रक्रिया का अनुसरण कर सकता है। चूंकि इस मामले में इस प्राधिकरण ने तत्परता से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया है, इसलिए किसी कानून का उल्लंघन अथवा घोर अन्याय का होना नहीं कहा जा सकता ।

यह व्यापक रूप से प्रचारित तथ्य है कि इस प्राधिकरण ने स्वयं आरंभ किए हुए विस्तृत परामर्शी कार्यों की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करने वाली कार्यशाला में तैयार होने वाले दिशा निर्देशों पर आधारित अपने विनियम बनाने का स्व-विवेक से निर्णय लिया था। इस प्रक्रिया में अपरिहार्य रूप से समय का अन्तर रहा है। कार्यशाला में इस क्षेत्र के विभिन्न हितों प्रतिनिधि शामिल थे और दिशा निर्देश सर्वसम्मति से तैयार किए गए थे। इन दिशा निर्देशों का पुन: व्यापक प्रचार किया गया है और मान्यता दी गई है। दिशा निर्देशों में प्रशुल्क विनियमन के संगठनात्मक ही नहीं बल्कि प्रक्रियात्मक पहलुओं को भी शामिल किया गया है। और इस मामले (अन्य सभी मामले) में इस प्राधिकरण द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया पत्तन नयासों और पत्तन प्रयोक्ताओं के विभिन्न वर्गों द्वारा अभिव्यक्त मतों के पूर्णत: अनुरूप है और कार्यशाला में सर्वसम्मति से पारित दिशा निर्देशों के अनुसार है। इन परिस्थितियों में प्रक्रियात्मक गुणागुण संगठन की संरचना के अनुरूप अवश्य बने रहने चाहिएं, भले ही वे संविधि की शर्तों के अनुरूप उतनी सख्ती से अनुरक्षित न रह पाएं।

5. फलत: उपर्युक्त करणोंवश पूर्वोक्त सभी नौ आपत्तियां अर्थहीन हैं और उचित रूप से अवधारित नहीं हैं। तदनुसार इन्हें निरस्त किया जाता है। परिणामस्वरूप अब मामले पर योग्यतानुसार विचार किया जाएगा।

एस. सत्यम, अध्यक्ष

18 जून, 1998

TARIFF AUTHORITY FOR MAJOR PORTS

NOTIFICATION

New Delhi, the 1st July, 1998

No. TAMP/2/97-JNPT.—In exercise of the powers conferred by Sections 48 and 50 of the Major Port Trusts Act, 1963 (38 of 1963), the Tariff Authority for Major Ports hereby issues an order on the preliminary objections raised by the Jawaharlal Nehru Port Trust (JNPT) in the case realating to the representation made by M/s. Ispat Industuies Ltd. against the JNPT and others about levy of tariff on transhipment operations in respect of their iron ore cargo movements.

S. SATHYAM, Chairman

[ADVT/III/IV/143/98 Exty]

TARIFF AUTHORITY FOR MAJOR PORTS

Case No. TAMP/2/97-JNPT

M/s. Ispat Industries Limited ..... Applicant

v/s

Jawaharlal Nehru Port Trust ..... Non-Applicant

ORDER

(Passed on this 18th day of June 1998)

This case relates to a representation received from M/s. Ispat Industures Litmited alleging arbitary levy of tariffs by the Jawaharlal Nehru Port Trust on their transhipment operations in respect of their iron ore cargo movements.

2. This case was taken up for a hearing in Delhi on 4 May, 1998.

3.1. At the hearing, before going into the merits of the case, the JNPT raised some preliminary objections about the Authority's jurisdiction to go into this matter and in the manner in which the case was being progressed. The preliminary objection raised in the verbal submissions at the hearing were in the main as follows :

(i) The Tariff Authority for Major Ports (TAMP) is not a quasi-judicial authority.

(ii) It cannot, therefore, adjudicate on petitions

(iii) The TAMP is not authorised to hold hearings. It cannot summon witnesses. It cannot record evidence.

3.2. Shri Rajiv Kumar, the Senior Counsel who appeared for the JNPT, requested for some time to be given to the JNPT to make proper written submissions in the matter. The Applicant (M/s. Ispat Industries Limited) was also in favour of such time being given so that they could properly reply to the written submissions of the JNPT.

3.3 Accordingly, the JNPT was given time till 15 May 98 to file written submissions; and, M/s. Ispat Industries Limited was required to give their replies to the written submission by 25 May 98.

3.4 Written submissions have been received from the JNPT in this case raising their prelimainry objections about this Authority's jurisdiction to go into such matters. Significantly, these objections incorporate the three objections made during the verbal submissions at the last hearing of this case. However, replies to the written submissions have not been received from M/s. Ispat Industries Limited.

4.1 The preliminary objections about this Authority's jurisdiction to go into such matters as raised by the JNPT, can be listed as follows:

(i) The TAMP is not a quasi-judicial Authority.

(ii) It cannot, therefore, adjudicate on petitions.

(iii) The TAMP can only fix rates for services provided by the Port Trusts. It cannot deal with any other party at all.

(iv) The TAMP is not authorised to hold hearings. It cannot summon witnesses. It cannot record evidence.

(v) The TAMP is at par with the Board of Trustees; it is not superior to the Board. The Board can order remissions and exemptions which the TAMP cannot.

(vi) The TAMP cannot even enforce its own orders about the rates.

(vii) The TAMP can only decide on new rates. Rates already in force before its constitution will remain valid. The TAMP cannot question their validity.

(viii) Under the MPT Act, the Board is competent to decide about all lease matters. The TAMP cannot sit in judgment over the Board's discretion in this regard. This discretion is an integral part of the Board's prerogative to control all management functions of the Port Trust.

It is significant that for both the TAMP and the Board, the Government is the superior body which can even supercede both.

(ix) The TAMP has not notified any Rules or Regulations about its functioning. The procedure adopted by it at present cannot, therefore, be said to conform to any prescriptions.

24. With this reckoning, we proceed to deal with these objections seriatim as follows :

(i) The TAMP is not a quasi-judicial Authority.

This is not the correct position of law.

There is no dispute that the Authority has been created under the statute and as such it is a statutory Authority. Its main functions are to frame scales of rates, fees, port dues as also rates for the properties of the Port Trust. In cases relating to tariff proposals, invariably, there are two parties, one the Board of Trustees, and the other a user or a body of users.

Earlier, it was the Board of Trustees who were empowered to frame scales of rates, fees, and port dues, etc., for the services to be rendered by them. In other words, they used to render the services and prescribe their own fees, rates and dues. After the amendment of the Major Port Trusts Act, the services are to be rendered by the Board of Trustees but the scale of rates, fees, port dues, etc., are to be determined by an independent body created under the statute.

The settled position of law is that if a statute empowers an Authority, not being a court in the ordinary sense, to decide disputes arising out of a claim by one party under the statute which is opposed by another party and to determine the respective rights of the contesting parties who are opposed to each other, there is a lis prima facie and, in the absence of anything in the statute to the contrary, it is the duty of the Autority to act judicially and the decision of the Authority is a quasi-judicial act.

Similarly, if a statutory Authority has the power to do any act which will rejudicially affect the subject, then, although there are not two parties apart from the Authority and the contest is between the Authority

proposing to do the act the subject opposing it, the final determination by the Authority will yet be a quasi-judicial act provided the Authority is required by the statute to act judicially.

In short, while the presence of two parties besides the deciding Authority will prima facie, and in the absence of any other factor, impose upon the Authority the duty to act judicially, the absence of two such parties in any proceedings will not by itself take the act of the Authority, out of the quasi-judicial category if the Authority is nevertheless required by the statute to act judicially.

As stated hereinabove, the Board of Trustees is rendering the services and the users are availing themselves of the services.

Earlier, the functions of prescribing rates, fees and dues, were with the Board even though services were also rendered by them. Now the functions of prescribing rates, etc., have been conferred on a statutory Authority.

Thus, there are two parties—one the Board of Trustees who are required to provide services, and the other 'users' who avail themselves of the services provided. The Authority has to determine the scale of rates, fees, dues, etc., which the Board can recover for the services rendered by them to the users.

Thus, there are two parties besides the deciding Authority and therefore, the Authority has to act judicially and it is a quasi-judicial Authority.

Besides the general analysis given above on this issue, we have also to reckon with some of the specific contentions of the JNPT.

It has been contended by the JNPT that this Authority is only an expert body set up to fix scale of rates and conditions. If the intention of the legislature was to set up this Authority only as an 'expert body', there would have been no need for an amendment to the Statute because an expert body could be set up even by an executive order i.e., by a Resolution of the Government. Setting up an expert body is usually a one-time affair for examining stated issues and making recommendations; thereafter, it becomes functus officio. In the present case, this Authority is constituted as a body corporate by the name aforesaid having perpetual succession and a common seal and by the said name to sue and be sued. If the contention of the JNPT is to be accepted, therefore, there would have been no need to set up a permanent body by amending the Statute.

An expert body set up for a particular purpose makes recommendations which are not binding on anyone. But, the decisions of this Authority will be binding on the Board of Trustees and the users. It is, therefore, fallacious to argue that this Authority is only an 'expert body'.

It has also been stressed by the JNPT that this Authority has been conferred with the power to levy fees and no more. The power to levy is a sovereign function and no fees can be levied unless authorised by an Act of the legislature. No 'expert body' is ever asked to exercise sovereign functions of the State. The JNPT has clearly misunderstood the concept of an expert body as distinguished from a quasi-judicial Authority. It has further been contended that this Authority is a technical body. Simply because some qualifications or technical knowledge is prescribed for the Members of the Authority it does not mean that the Authority will only be a 'technical body'. The functions, powers, and duties will have to be examined to determine whether it is only a technical body. In this case, this Authority is not called upon to dicharge some technical functions; it is called upon to determine, to decide, to adjudicate upon the rights and conditions of two or more contending parties. In other worlds, it is not a body required simply to make a proposal based on technical knowledge but to determine disputes between contesting parties.

Seen in this light, the contentions in reference of the JNPT are clearly shown to be devoid of any merit.

(ii) **The TAMP cannot, therefore, adjudicate on petitions**

This objection is as fallacious as the one about the quasi-judicial character of this Authority.

It is an established principle of law that quasi-judicial Authorities must follow the principles of natural justice before determining any dispute between parties. One of the principles of natural justice is that the parties shall be given an opportunity for a hearing wherein they can express their points of view to enable the Authority to determine the point at issue. The essential element of judicial determination is to give an opportunity to make a representation to the party which is affected by an order.

That being so, it will be absolutely essential for this Authority to afford a right of representation to the parties in order to comply with the principles of natural justice.

Any judicial or quasi-judicial Tribunal/Authorty determining the rights of individuals must conform to the principles of natural justice in order to maintain the rule of law. The reason is that this principle constitutes the essence of justice and must, therefore, be observed by any person or body charged with a duty of deciding the rights of the parties which, incidentally, can be said to involve the duty of acting judicially.

The first principle of natural justice is "Nemo debet esse judex in propria causa". It means that no one shall be a judge in his own cause. It seems to us, it is this principle of natural justice that weighed on the mind of the legislature when it took away from the Board of Trustees the power to levy tariffs, etc., and conferred it on the other statutory body, viz., this Authority.

The other principle of natural justice is "Audi alteram partem". It means that no one shall be condemned unheard. In fact, this principle is not confined in its application only to the conduct of strictly legal Tribunals/Authorities. It is clearly applicable to every Tribunal or body of persons vested with the authority to adjudicate upon matters involving civil consequences to individuals. Any Tribunal/Authority, judicial or administrative, which is vested with the power to affect the rights of a citizen, is bound to give hirh an opportuntiy of being heard before it proceeds with action. This dictum leads to the result that no man is to be deprived of his rights without having an opportunity of being heard. In the present case, the very nature of fuctions, powers, and duties of this Authority necessitates hearing of the parties before any decision is taken affecting their rights.

It is contended that the right of hearing has not been conferred by the Statute. The settled position of law is that a hearing has to be offered to all the parties who are likely to meet with civil cosequences unless the legislature has expressly or impliedly given the authority to act without affording such hearing. In this case, there is no such specific authorisation given. That being so, this Authority can not but afford a hearing to the parties to give them an opportunity to make a representation against the contention raised by the other party. If this basic requirement is contravened, any decision of the Authority may be held to be void ab initio because of non-compliance with the principles of natural justice.

It has been argued by the JNPT that the power to adjudicate shall be either specifically vested or shall not be incompatible with the basic scheme of things. It is their contention that, in their present form, the provisions relating to the TAMP do not admit of adjudication. In this context, it will be relevant to recall the circumstances leading to the constitution of this neutral, statutorily autonomous Authority.

The eleven major ports handle over 80% of the country's import/export traffic. In our present stage of development, it was felt, the economy should not be exposed to any destabilisation of traffic in the major ports. Since it was not possible to anticipate all the eventualities of the move to privatise ports, a cautious approach was envisioned. Free operation of open market forces was, therefore, not recommended until the pace of privatisation picked up and competitive open market conditions stabilised. Accordingly, a neutral Regulatory Body was proposed to be set up for regulating tariffs. Inherent in this arrangement was, perhaps, also an undercurrent of anxiety to guard against private monopolies in ports. The (prospective) private operators themselves also seemed to prefer regulation of tariffs by a statutorily autonomous body rather than by the Port Trusts of the Government.

In this backdrop, the raison d'être of the Authority clearly emerges as an arbiter between port trusts/private operators and (their) users. The basic purpose is to guard against the ills of public or private monopolies and to rationalise the tariff structure and streamline the tariff-setting system. If this is to be so, then, how can a reasonably structutred system of consultations be held to be militating against the basic scheme of things!

(iii) **The TAMP can only fix rates for services provided by the Port Trusts. It cannot deal with any other party at all.**

The Authority is expected to introduce objectivity and transparency in its functioning and streamline and systematise fixation of tariffs. There is an expectation that it will use the tariff leverage to effect improvements in operational efficiency at ports. Interestingly, however, perceptions do not converge on the extent of the Authority's role. Must the role be strictly limited to tariff determination or can the Authority start using the 'tariff leverage' to effect improvements in operational efficiency of ports ? The Port Trust Authorities, at least some of them, will like it to be limited to tariff determination. But, users prefer a larger role for the Authority. Going by the scheme of things, the intention of the legislature will also seem to be that it will not be very meaningful to regulate tariffs if such a regulation is not to result in better quality of

services. It was in this backdrop that a decision was taken by us to promote user-orientation in its work and to let the participative process preponderate in its working.

It is settled principle of law that the quasi-judicial authority must follow principles of natural justice before determining any dispute between the parties. One of the principles of natural justice is that the parties shall be given a hearing when they can express their point of view to enable the Authority to determine the points at issue. Eential elements of judicial determination are giving an opportunity to the party who is affected by an order to make a representation making some kind of inquiry, hearing and weighing evidence if any and considering all the facts and circumstances bearing on the merits of the controversy before any decision is made. Accordingly, it is essential that a hearing is afforded to the respective parties before the Authority determines the point in dispute.

Assuming, though it is not so, that the Authority is not a quasi-judicial body, but only an adminstrative Authority,even then, the principles of natural justice will be attracted and it must afford a hearing to the parties. It has been held in more than one case that even an administrative order must be made in conformity with the rules of natural justice if it involves civil consequences or if it affects any right of a citizen which is capable of being enforced by a legal action which will include even procedural rights.

The Authority must, therfore, afford a hearing before taking a decision on a dispute between the Port Trusts and the users.

A Port Trust is a Public Trust created (and equipped) to serve the public cause of helping importers/ exporters to promote trade by the sea route. It is indeed amazing that the same Public Trust shall be arguing so vehemently about not giving its 'users' a reasonable opportunity to represent their grievances! The sheer impropriety of this attitude cannot also be ignored.

(iv) **The TAMP is not authorised to hold hearings. It cannot summon witnesses. It cannot record evidence.**

In the light of the analysis given above, it is abundantly clear that this Authority, being quasi-judicial in nature, can (and must) hold hearings and follow the prunciples of natural justice. It is noteworthy that, according to established case law, even an administrative order must be made in conformity with the rules of natural justice if it inyolves civil consequences or if it affects any right of a citizen which is capable of being enforced by a legal action which will include even procedural rights That being so, there can be no force in this objection.

As regards the observation about absence of specific provisions enabling summoning of persons, etc , it has to be admitted that the position is indeed factually so. These are gaps in the statutory provisions They do hamper the Authority's working. That does not mean, they restrict the role and functions of the Authority. The postion today is that the Authority cannot compel persons to appear and depose; but, this does not mean that the Authority cannot act . It can invite persons to tender evidence either in writing or in person and record the evidence of those who do respond. It is also relevant to note here that it is not always the oral evidence that is necessary but, parties can furnish documentary evidence or affidavit of evidence so that the Authority has before it sufficient materials to come to correct findings.

In effect, this objection holds no force and deserves to be dismissed.

(v) **The TAMP is at par with the Board of Trustees; it is not superior to the Board. The Board can order remissions and exemptions which the TAMP cannot.**

(vi) **The TAMP cannot even enforce its own orders about the rates.**

There is no dispute that both the Authority and the Board are statutory bodies There is also no dispute about the overriding powers of the Government in respect of both these bodies But, the JNPT appears to have ignored that 'functional hierarchical arrangement' inherent in the system stipulated by the statute for tariff regulation. The JNPT has erred in assuming that the Authority has been vested only with the (erstwhile) powers of the Board and only for the single purpose of fixing tariffs The correct position is that the 'sanctioning powers' earlier exercised by the Government have (now) been vested in the TAMP. If that is to be so, then, the Authority cannot but sit in judgement over the Board s recommendations in matters relating to tariffs.

Tariff regulation has, again, been very narrowly perceived by the JNPT. As has already been discussed above, the Authority is expected to introduce objectivity and transparency in its functioning and stream-

line and systematise fixation of tariffs. There is also an expectation (and, the intention of the legislature appears to be so too) that it will use the tariff-leverage to effect improvements in operational efficiency at ports. It is for this reason that the Authority is required not only to prescribe rates but also the conditionalities governing their application.

Arguing further on this point about the Authority not being 'superior', it has actually been attempted to contend that the Board is, in fact, 'superior'. The argument has been that 'rates' are enforced by the Board and not by the Authority, there is really no provision empowering the Authority to enforce its orders. This argument seems to confuse between 'enforcement' and 'coercion'. What the statute fails to provide are 'coercive powers'. According to available provisions, the action of 'notification' in the Gazette of India amounts to 'enforcement' of its orders. Non-adherence of the notified order will *ipso facto* be an illegality. It will no doubt be more meaningful to fill up the gap in the Statute and add the 'coercive powers'. But, it must be understood, this lacuna does not in any way dilute the 'force' of the Authority's orders.

It has also been argued that, significantly, the power to order remission and exemption has been retained with the Board and not given to this Authority thereby signaling the restricted role of this Authority. It may be pointed out that the power to grant remission and exemption is never exercised by a quasi-judicial Authority whose main function is to adjudicate upon rights and contentions of two parties. The power to grant remission and exemption has to be with an administrative Authority who has to use the discretion based on special circumstances of individual cases or classes of cases. This very fact, interstingly, can be seen to support the view that this Authority is a quasi-judicial and not an administrative body.

The JNPT has cited various provisions of the Statute to list the extent of powers and functions of the Board of Trustees. There can be no quarrel about these provisions of law. The powers and functions in reference of the Board of Trustees are all administrative in nature and this Authority is not concerned with such administrative functions. This Authority will only be concerned with the quasi-judicial functions that the amended Statute has taken away from the Board of Trustees and vested in it. In our view, this was a deliberate act of the legislature to distinguish between administrative and quasi-judicial powers/functions so as to ensure that there was no violation of the principles of natural justice.

(vii) **The TAMP can only decided on new rates. Rates already in force before its constitution will remain valid. The TAMP cannot question their validity.**

To avoid any ambiguity or confusionn on this issue, we wish to state categorically that there is no dispute that the rates already sanctioned will remain valid till they are altered by this Authority in the discharge of its statutory functions in terms of the Statute. As soon as new rates, etc., are determined and notified, the old rates will yield place to the new ones.

There is no dispute about the Authority's powers to prescribe new rates. The objection is that it cannot question the validity of existing rates. This objection, to say the least, is confused and bereft of any merit. After all, prescription of a new rates does amount to altering the old rate (and, in the process, questioning it).

The JNPT has apparently confused the general prescription in all such enactments, where new regulatory mechanisms are introduced, that the rates already in existence will not be nullified by the mere constitution of a new regulatory mechanism; they will have to be specifically nullified and replaced by a new set of rates by the regulatory mechanism.

It has to be recognised in this context that the *suo motu* jurisdiction of the Authority to formulate tariff proposals is always available for it to initiate action. In other words, it need not wait for any proposals to emanate from the Port Trust or anywhere else. Significanly, the MPT Act also does not specify that proposals have to be initiated by anybody. The authority has been given the total discretion to prescribe and notify the rates. In the face of such a legal provision, how can it be meaningfully contended that the Authority cannot question any rates ? Probably, the JNPT is laying the foundation for justifying its action with reference to rates notified in March 97. Their confidence seems to stem from the position that the rates notified had been sanctioned by the Government. In the first place, any reference to these rates appears to be irrelevant. Be that as it may,even if these rates are to be reckoned with, it has to be recognised

that they were notified in March 97 that is after the parliament had already passed the amendments to the MPT Act in February 97. From then on, the rates could be approved only by this Authority. In the event, the validity of the rates in reference notified by the JNPT can be open to question.

(viii) **Under the MPT Act, the Board is competent to decided about all lease matters. The TAMP cannot sit in judgement over the Board's discretion in this regard. This discretion is an integral part of the Board's prerogative to control all management functions of the Port Trust.**

With reference to this objection, we feel compelled to reiterate the position that there is no scope in the scheme of things for any clash of interest between the two statutory bodies. The two have independent areas of operation - one administrative and the other quasi-judicial. There is no dispute about the powers given to the Board in its area of operation. Also, it will never be the intention of the Authority to encroach upon the Board's management functions. They can, by all means, introduce any activities at the port level. So long as such activities do not in any way impinge upon the scheme of tariffs, this Authority shall have no scope to intervene in such matters. But, the Authority's legitimate role about examining the relevance or the need of any particular activity for the purpose of computing tariffs cannot justifiably be questioned. In the instant case, it is precisely this aspect that is being (or has been sought to be) overlooked by the JNPT.

In the result, this objection does no merit any consideration.

(ix) **The TAMP has not notified any Rules or Regulations about its functioning. The procedure adopted by it at present cannot , therefore, be said to conform to any prescriptions.**

It is an established principle of law that whenever there are no statutory rules or regulations, an adjudicating Authority can follow its own procedure keeping in mind the principles of natural justice. Since, in this case, this Authority has assiduously adhered to the principles of natural justice, there cannot be said to have been any violation of law or miscarriage of justice.

It is a widely publicised fact that this Authority had taken a deliberate decision to base its Regulations on Guidelines to be developed in a Workshop that was to represent the culmination of the elaborate consultive exercise launched by it . In this process, inevitably there has been a time lag. The Workshop was held with a cross-sectional representation of interests in the sector, and Guidelines were unanimously developed. These Guidelines, again, have been widely publicised and acknowledged. The Guidelines encompass not only the structural but also the procedural aspects of tariff regulation. And, the procedure adopted by this Authority in this case (and, all other cases) has been **strictly in conformity** with the views expressed by a cross-section of Port Trusts and port-users and is in accordance with the Guidelines **unanimously adopted** at the workshop. In the circumstance, the merit of the modalities must survive on the spirit of the set up even if not by the strict stipulates of the statute.

5. In the result, and for the reasons given above, all the nine objections discussed above have to be seen to be vacuous and ill conceived. They are dismissed accordingly. Consequenly, the case will now proceed for consideration on merits.

S. SATHYAM, Chairman

18 June, 1998.

Printed by the Manager, Govt of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054 — 1998